पण्डितमधुसूदन ओझा का गीता विषयक चिन्तन
चिन्तन की स्वस्थ समग्र भारतीय परम्परा का अनुपम निदर्शन

पण्डित अनन्त शर्मा
भारतीय विद्यामनीषी
पीठाचार्य-वेद पुराण स्मृति शोधपीठ
विश्वगुरुदीप आश्रम शोध संस्थान, जयपुर

श्रीमद् भगवद्गीता विश्व का एक अद्भुत ग्रन्थ है। कलेवर में अनुष्टुप्बहुल मात्र सात सौ पद्यों का यह, सबसे छोटा ग्रंथ है, किंतु विषयव्याप्ति की दृष्टि से सर्वाधिक गुरुतापूर्ण है। औपनिषदिक विषय से अभिन्न होते हुए भी अपने वैशिष्ट्य से प्रस्थानत्रयी में इसका स्थान है। स्वसम्प्रदाय की आगमपरम्परा-शुद्धि हेतु प्रत्येक आचार्य को इसका अनिवार्य आश्रय लेना पड़ा तथा स्वमतानुसार सम्पूर्ण भाष्य करना पड़ा इस पर सर्वधिक भाष्य और टीकाएँ हैं। विवेचनात्मक ग्रन्थ भी गीता से अधिक किसी दूसरे ग्रंथ पर नहीं है। आज भी भाष्य टीका और निबन्धों का क्रम अबाधरूप से चल रहा है। विश्व की सभी भाषाओं में इसके अनुवाद हैं। देश-विदेश के अनेक दार्शनिकों का यह जीवनसर्वस्व रहा है। ऐसे लोकातिशायी महान् ग्रन्थ पर श्री ओझा जी का विज्ञानभाष्य भी इतना ही अद्भुत और असामान्य महत्त्व का है। अन्य विषयों की भाँति यहाँ भी ओझाजी की क्रान्त दृष्टि अभूतपूर्व रहस्योद्घाटन करती हैं जहाँ आज तक किसी की दृष्टि तनिक भी नहीं गयी है।

उनके अनुसार इसमें चार विद्याएँ, चौबीस उपनिषत् तथा एक सौ साठ उपदेश हैं। इतने लघुकलेवर ग्रंथ में ऐसा एकत्र समवेत ज्ञान, विश्ववाङ्मय में अन्यत्र कहीं नहीं है। यद्यपि प्राचीन काल में इसके उदात्त स्वरूप का ऐसा कुछ दर्शन पूर्वमनीषियों को था, जो इसके प्रत्येक अध्याय की पुष्पिका ''इति श्रीमद्भगवद् गीता सूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे अमुकयोगो नाम अमुकोऽध्यायः'' से प्रतीत होता है, तथापि जितनी स्पष्ट गणनापूर्वक तथ्याधारित युक्ति प्रमाणसिद्ध स्थापनामूलक दृष्टि ओझाजी की है, पूर्वाचार्यों की सम्भवतः नहीं रही । बहुवचन के उपनिषत्सु को प्रायः आदरार्थक बहुवचन में ही लिया जाता रहा है, चौबीस उपनिषदों की गणना कर बहुवचन का वास्तविक अभिप्राय विज्ञानभाष्य से ही स्पष्ट होता है। विभूतियोग जैसे पारिभाषिक पदों का मर्म इसी भाष्य से उद्घाटित होता है, विशेषता

यह है कि इसमें गीता के पद्यों की व्याख्या नहीं की गयी है। इसके प्रकाश में विद्वान् गीता का रहस्य खोल सकते है जैसा कि उनके शिष्य स्वर्गीय पं. मोतीलाल शास्त्री ने हजारों पृष्ठों में 55 - 56 ग्रन्थ प्रणयन कर अति विस्तृत भाष्य लिखा है।

इससे ओझाजी की दृष्टि की मौलिकता अगाधता और व्यापकता प्रमाणित होती है। उनके किसी एक सूत्र को पढ़ कर व्यक्ति सम्पूर्ण जीवन गीता के स्वाध्याय में लगा कर भी सम्भवतः यह कहने में समर्थ नहीं हो सकता, कि इस क्षेत्र- विशेष में मैं ओझाजी को पूर्ण आत्मस्मात् कर चुका हूँ।

ओझाजी ने बताया है कि वे गीता में उपदिष्ट सभी विद्याओं को इस कारण स्पष्ट नहीं कर सके कि वे गीता के ऐतिह्यक्रम सन्दर्भ से बाहर नहीं निकल पाये, अतः उनकी व्याख्याएँ दोषमुक्त नहीं बन सकी तथा इन विद्याओं को स्पष्ट प्रकाशित नहीं कर सकीं। गीतोपनिषत् का उपदेश भारतयुद्ध के प्रसंग में हुआ था, अतः वह महाभारत का एक भाग है और उसी इतिहास ग्रन्थ-क्रम में निबद्ध है। ऐतिहासिक कषाय से अनुषक्त गीता में विज्ञान सही रूप में प्रकाशित नहीं हो पा रहा है।

ध्यान रहे कि 'ऐतिहासिक' से ओझाजी का अभिप्राय उस रूप में नहीं है, जिस रूप में आधुनिक विद्वान् गीता प्रवचन काल को ले कर विचार किया करते हैं ओर न उनका अभिप्राय गीता के कलेवर को लेकर ही है कि गीता सात श्लोकों वाली ही मूल गीता है अथवा सत्तर श्लोकों वाली अथवा सात सौ श्लोकों वाली, जैसा कि वर्तमान युग के विचारक अपने अपने ढंग से इसके प्रक्षिप्तत्व का अथवा प्रक्षेप मात्रा का विचार किया करते हैं। उन्होंने विज्ञानभाष्य के प्रथम काण्ड के विवक्षा नामक प्रथम प्रकाश में निम्नलिखित पद्यों द्वारा अपना मन्तव्य स्पष्ट कर दिया है-

योगीश्वरेण कृष्णेन लोकशोकहृतेः कृते।
उपदिष्टार्जुने शिष्ये गीता सेयं निसृप्यते॥

मानुषरूपः कृष्णोऽव्ययकृष्णस्य स्वरूप्माख्यन् ।
विद्याश्चतुर्विधा उपदिदेश सैषोच्यते गीता॥

त एव त्वीश्वरं कृष्णं पश्यन्ति परमार्थतः।
विज्ञानतो ये पश्यन्ति गीतोपनिषदं पराम्।।

इनका अभिप्राय यह है कि लोक शोक हरण करने के लिये योगीश्वर कृष्ण ने अपने शिष्य अर्जुन को जिसका उपदेश किया था, उस गीता का यहाँ निरूपण है। मानुषरूप कृष्ण ने अव्यय कृष्ण का स्वरूप बताने हेतु चार प्रकार की विद्याओं का उपदेश दिया था, वही गीता कहलाता है। जो इस श्रेष्ठ पराविद्यारूपा गीता को विज्ञान दृष्टि से देखते हैं, वे ही परमार्थ रूप से ईश्वर कृष्ण को देख पाते हैं।

गीता वक्ता श्री कृष्ण को ओझाजी ने आधिकारिक माना है -

कृष्णो योगेश्वरः सोऽयमाधिकारिक इष्यते।
मनुष्यत्वं चेश्वरत्वं द्वयं तत्र विभाव्यते॥ पृ013

ये योगेश्वर कृष्ण आधिकारिक हैं। इनमें मनुष्यता और ईश्वरता दोनों ही युगपत् सम्भव हैं।

इस कथन से निम्नलिखित पाँच बिन्दु प्रकाश में आते हैं। गीता के उपदेशक योगीश्वर अथवा योगेश्वर कृष्ण आधिकारिक हैं। 2 - गीता का प्रयोजन लोकशोकहरण है। 3- इस प्रयोजन की पूर्ति के लिए अव्यय का ज्ञान आवश्यक होने से वही गीता में कहा गया है, अतः वही गीता का प्रतिपाद्य है। 4 -गीताज्ञान की प्राप्ति के लिए शिष्यत्व आवश्यक है। 5 -शिष्यत्व में भी विज्ञानदृष्टिसम्पन्नता अनिवार्य है।

गीता एवं गीताकार को समझने के लिए यह भूमिका अनिवार्य है। यह भूमिका ओझाजी की उपज्ञा है अथवा प्राचीन आर्ष वाङ्मय से अनुमोदित है, इस पर कुछ विचार आवश्यक है।

यद्यपि युक्ति एवं प्रमाण पूर्वक स्थापित सिद्धान्त ग्राह्य होना चाहिए, स्वस्थ परमपरा यही है, अतः आपाततः ओझाजी के प्रमाणीकरण की आवश्यकता नहीं है, तथापि भिन्न दृष्टि रखने वाले तथा अपनी दृष्टि पर आग्रहिल कतिपय विचारक ओझाजी को आतंकवादी मानते हैं, तथा इनके विचारों को काल्पनिक या प्रौढिवाद कहकर अग्राह्य कोटि में लेते हैं तथा साहसैकरसिक कतिपय महानुभाव उन्हें आगमपरम्पराविरहित भी मानते हैं। उनके लिए यह विनम्र प्रयास है साथ ही ओझा जी का अध्ययन करने वाले विद्वानों को भी इस दृष्टि से कुछ लाभ मिल सकेगा, ऐसा विश्वास है।

श्रीकृष्ण संसार के समक्ष गीताज्ञान रखना चाहते थे यह उन्हें अपने अन्य लोकहितकार्यों से भी अधिक प्रिय या अभीष्ट था, अतः योगयुक्त हो कर उन्होंने गीतोपदेश दिया, यह उनके स्वयं के कथन से ही स्पष्ट है। युद्धोपरान्त भी श्रीकृष्ण पर्याप्त समय तक हस्तिनापुर में ठहरे थे। उस समय अर्जुन ने एक बार श्रीकृष्ण से निवेदन किया कि संग्राम के

आरम्भ में मुझे आपके माहात्म्य का वास्तविक ज्ञान हुआ तथा आपका ऐश्वर रूप देखने को मिला उस समय सौहार्द से आपने मुझे जो उपदेश दिया था, चित्तभ्रशंता से मैं उसे भूल बैठा हूँ अब आप मुझे वह महनीय अर्थ कहिये, उसे सुनने की उत्कण्ठा है। श्रीकृष्ण अर्जुन को गले लगा कर कहते हैं-

पार्थ ! मैंने तुम्हें गुह्य गोपनीय ज्ञान दिया था। लोकों का आधारभूत सनातन अव्यय शाश्वत ईश्वररूप स्वसृष्टि धर्म का उपदेश दिया था। अपनी अबुद्धि से तुम उसे ग्रहण नहीं कर सके यह मुझे बहुत ही बुरा लग रहा है। आज मेरी वह स्मृति नहीं हो सकेगी, सचमुच तुम श्रद्धाहीन हो दुर्मेधा हो, मैं यथावत् उसे पुनः नहीं कह सकता हूँ। ब्रह्म पद प्राप्ति में वह ज्ञान पूर्ण समर्थ था। मैंने वह ब्रह्मयोगयुक्त होकर तुम्हें कहा था। (अश्वमेधपर्व 16/8/93)

इससे स्पष्ट है कि श्रीकृष्ण उस उपदेश को कितना महत्त्व देते हैं। अपने प्रिय अर्जुन को जो उनका भाई बहनोई सखा शिष्य एवं स्वविभूति - पाण्डवानां धनञ्जय (गीता 10/38) है।

अश्रद्दधान और दुर्मेधा तक कह देते हैं तथा उसके प्रमाद को महत् अप्रिय कहते हैं। योगयुक्त कहने का अभिप्राय है कि वे उस समय ईश्वर अव्यय आदि भूमिकाओं में उतर कर तद्रूप होते हुए उपदेश कर रहे थे। स्मृति देश-काल-सापेक्ष है वह इस समय कैसे सम्भव है? इतना होने पर भी वे प्रकारान्तर से उस विषय को कहते हैं, जो गीता के प्रतिपाद्य को समझने हेतु कृष्ण द्वारा प्रस्तुत भूमिका है। यह विषय अनुगीता पर्व में 16 से 59 तक 36 अध्यायों में अनुगीता नाम से अश्वमेधपर्व में निबद्ध है। इस प्रसंग के उपसंहार में कृष्ण कहते हैं -

पूर्वमप्येतदेवोक्तं युद्धकाल उपस्थिते।
मयातव महाबाहो तस्मादत्र मनः कुरु।।

(हे महाबाहो ! पहले भी युद्धारम्भ में मैंनें तुम्हें यही कहा था, अतः इसमें मन लगाओ)। गीता पर व्याख्या या विवेचना करने वालों के लिये अध्यापन का यह प्रसंग अतीव लाभदायक एवम् अनिवार्य है।

युद्धारम्भ में दिया गया उपदेश जनसामान्य में आ सकेगा तथा लोकहित कर सकेगा, यह कैसे सम्भव है? ऐसे प्रश्नों का उत्तर कृष्ण के योगीश्वरत्व आधिकारिकत्व से मिल जाता है। भला ! कृष्ण जिसका प्रचार चाहें और वह प्रचार न पा सके, यह कैसे सम्भव है।

गीता में कृष्ण के कथन से सुस्पष्ट है, कि वे इसका लोकप्रसार चाहते हैं-

इदं ते नातपस्काय नाभक्ताय कदाचन ।
न चाशुश्रूषवे वाच्यं न च मां योऽभ्यसूयति ।।95/67।।

य इदं परमं गुह्यं मद्भक्तेवष्वभिधास्यति ।
भक्तिं मयि परां कृत्वा मामेवैष्यत्यसंशयः ।। 68 ।।

न च तस्मान्मनुष्येषु कश्चिन्मे प्रियकृत्तमः।
भविता न च मे तस्मादन्यः प्रियतरो भुविः।।69।।

अध्येष्यते चा य इमं धर्म्यं संवादमावयोः।
ज्ञानयज्ञेन तेनाहमिष्टः स्यामिति मे मतिः।।70।।

इस प्रकार प्रथम वे प्रथमतः श्रोता अर्जुन से ही अपेक्षा रखते हैं कि सब प्रकार से योग्य पात्र को ही इसका उपदेश किया जावे। अर्जुन से भिन्न और भी इस उपदेश कार्य से कृष्ण का प्रिय करने वाले हों यह हर 68 वें पद्य से स्पष्ट होता है। 70 वें पद्य में इस उपदेश का स्वाध्याय ज्ञानयज्ञ से प्रभु का यजन बताया गया है। वही योगीश्वरत्व यहाँ भी कार्य करता है; अपनी ही अन्य विभूति श्री कृष्णद्वैपायन वेदव्यास - मुनीनाप्यहं व्यासः- को एतदर्थ प्रेरणा देते हैं। निग्रहानुग्रह में स्वयं समर्थ भी व्यास भगवान् कृष्ण के मनीषित्व को मूर्त्त रूप देते है और महाभारत में गीता अनुगीता को निबद्ध करते हैं। इन व्यास के अनुग्रह से सञ्जय तो अर्जुन के साथ साथ ही सुनते जा रहे थे, सञ्जय ने धृतराष्ट्र को सुनाया था-

व्यासप्रसादाच्छ्रुतवानेतद् गुह्यमहं परम् ।
योगं योगेश्वरात्कृष्णात् साक्षात्कथयतः स्वयम् ॥ 15/75।।

न केवल व्यास, अपितु चराचरगुरु ब्रह्मा तथा भगवान् शंकर भी कृष्ण का नियोग मानते थे। कृष्णस्तुति में अर्जुन कहते हैं-

ब्रह्मा चराचरगुरुर्यस्येदं सकलं जगत् ।
ललाटाज्जातवाञ्शम्भुः शूलपाणिस्त्रिलोचन॥
त्वन्नियोगकरावेताविति मे नारदोऽ ब्रवीत् ॥ 12/40-49।।

गीता के उपदेश एवं श्रीकृष्ण के विषय में महान् दार्शनिक शंकाराचार्य के विचार भी महाभारत के आधार पर ऐसे ही हैं, जो गीताभाष्य के उपोद्धात में व्यक्त हुए हैं, उसके कतिपय अंश द्रष्टव्य हैं - दीर्घेण कालेन अनुष्ठातृणां कामोद्भवाद् हीयमान - विवेकविज्ञानहेतुकेन अधर्मेण अभिभूयमाने धर्मे प्रवर्धमाने च अधर्मे जगतः स्थितिं परिपिपालायेषु स आदिकर्त्ता नारायणास्यो विष्णुः भौमस्य ब्रह्मणो ब्राह्मणस्य रक्षणार्थं देवक्यां वसुदेवाद् अंशेन कृष्णः किल संबभूव स च भगवान् ज्ञानैश्वर्यशक्तिबलवीर्यतेजोभिः सदा सम्पन्नः स्वमायया देहवान् इव जात इव च लोकानुग्रहं कुर्वन् इव स्वप्रयोजनाभावेऽपि भूतानुजिघृक्षता वैदिकं हि (प्रवृत्तिनिवृत्तिरूपं) धर्मद्वयम् अर्जुनाय शोकमोहमहोदधौ निमग्नाय उपदिदेश गुणाधिकैः हि गृहीत अनुष्ठीयमानः धर्मः प्रचयं गमिष्यतीति।

ऐसा उपदेश देने के लिए संकल्पवान् जगद्गुरु कृष्ण को उसके अनुकूल व्यवस्था करनी ही थी, वह उन्होंने की। कुछ समय के लिए दोनों सेनाओं को सम्मोहित कर लेना महायोगेश्वर के लिये कठिन नहीं था। यह केवल गीता प्रवचन को सिद्ध करने मात्र के लिए कल्पित युक्त्याभास नहीं है। महाभारत में ऐसे अनेक निदर्शन हैं। युद्ध स्थल में जयद्रथवध के लिए समयपूर्व सूर्यास्त का दृश्य प्रस्तुत कर देना, दोनों सेनाओं के सम्मोहन से ही हुआ था। भगवान् व्यास कहते हैं-

ततोऽसृजत्तमः कृष्णः सूर्यस्यावरणं प्रति।
योगी योगेन संयुक्तो योगिनामीश्वरो हरिः ॥ द्रोण पर्व ।।

(योग से संयुक्त योगियों के ईश्वर, योगी श्री हरि ने सूर्य आवरण रूप में तम की सृष्टि की)। ओझाजी के मस्तिष्क में यह घटना और इससे सम्बन्धित भाव प्रबल रूप में विद्यमान हैं अतः गीता पर्यवसान में आये योगेश्वर विशेषण को न लेकर विवक्षा के द्वितीय पद्य में वे योगीश्वर विशेषण देते हैं, जो जहाँ तक योगिनामीश्वर का ही सामसिक रूप है। ऐसा ही योगप्रभाव सभापर्व में दुःशासन से द्रोपदी की रक्षा के प्रसङ्ग में देखते हैं। द्रौपदी इनके महायोगित्व रूप से परिचित है तथा उन्हें महायोगी कह कर भी पुकारती है-

कृष्ण महायोगिन् विश्वात्मन् विश्वभावन।
प्रपन्नां पाहि गोविन्द कुरुमध्येऽवसीदतीम्॥ 67/43

(कृष्ण कृष्ण महायोगिन् विश्वात्मन् विश्वभावन ! कुरुओं के मध्य पीडित एवं शरणागत मुझ द्रौपदी को हे गोविंद ! बचाओ) भागवतकार को यह पूर्वार्ध इतना प्रिय लगा, कि उन्होनें इसे सुरभि के मुख से कृष्ण के लिए कहलवाया-

कृष्ण कृष्ण महायोगिन् विश्वात्मन् विश्वसम्भव।
भवता लोकनाथेन सनाथा वयमच्युत॥10.27.15

भरी सभा देखती है, कि जैसे द्रौपदी वस्त्रों का एक अजस्त्र स्रोत हो गयी है। दुःशासन का बल दर्प टूट जाता है और वह थक कर बैठ जाता है।

ऐसा ही एक प्रसंग वनपर्व है। यहाँ भी द्रौपदी अपने पूर्वानुमान के आधार पर अविचल अनन्य श्रद्धा से श्री कृष्ण को दुर्वासा के कोप से भाग पाने हेतु पुकारती हुई कहती है -

दुःशासनादहं पूर्वं सभायां मोचिता यथा।
तथैव संकटादस्मान् मामुदधर्तुमिहार्हसि॥ 263/16।।

श्री कृष्ण तत्काल वहाँ आते हैं तथा प्रबल क्षुधानिवृत्ति के लिए द्रौपदी से कुछ खाने को मांगते हैं और बलात् माँजी धोई बटलोई उठाकर देखते हुए शाक का एक पत्ता पाकर मुख में रखते हुए कहते है-

विश्वात्मा प्रीयतां देवस्तुष्टश्चास्विति यज्ञभुक् ।। 263/25।।

(इस शाक के पत्र से विश्वात्मा सर्वेश्वर प्रसन्न हो और यज्ञभोक्ता वे देव इससे तुष्ट हों) फल निकलता है दस हजार शिष्यों सहित दुर्वासाजी की ऐसी तृप्ति हुई कि वे अपने को अन्न का एक कवल भी मुख में देने में असमर्थ पा कर भगवान् के यज्ञ से भाग निकलते हैं। यहाँ एक बात और ध्यान देने की है, जब तक कृष्ण ने नहीं चाहा पाण्डव न तो उन्हें देख पाये और न यह सब कुछ जान ही पाये, कि दुर्वासा बिना भोजन किये ही कैसे चले गये। कृष्ण ने ही प्रकट होकर उन्हें आश्वस्त किया-

इति चिन्तापरान् दृष्ट्वा निःश्वसन्तो मुहुर्मुहुः।
उवाच वचनं श्रीमान् कृष्णः प्रत्यक्षतां गतः ॥ 263 / 49।।

इसी भाँति शान्तिदूत के रूप में सन्धिप्रस्ताव लेकर पर श्रीकृष्ण को कैद कर लेने की दुरभिसंधि दुर्योधनादि दुष्टों की चौकडी ने की थी। इस विषय में श्री कृष्ण दुर्योधन को फटकारते हुए अपना ऐश्वर रूप प्रकट करते हैं, जिसे द्रोणा भीष्म विदुर सञ्जय एवं उपस्थित ऋषिगण ही उन्हीं के प्रसाद से दिव्य चक्षु पा कर देख पाये थे शेष लोगों ने तो विकराल रूप से भयभीत होकर नेत्र ही मूंद लिये थे -

तं दृष्ट्वा घोरमात्मानं केशवस्य महात्मनः ।
न्यमीलयन्त नेत्राणि राजानस्त्रस्तचेतसः॥

ऋते द्रोणं भीष्मं च विदुरं च महामतिम् ।
सञ्जयं च महाभागमृषींश्चैव तपोधनान् ॥
प्रादात् तेषां सा भगवान् दिव्यं चक्षुर्जनार्दनः॥ उद्योगपर्व 131/13-15।।

इस प्रकार योगीश्वर कृष्ण के लिए सैनिकों को सम्मोहित कर कालचक्र की गति को अपने अनुकूल कर लेना तनिक भी कठिन न था और ना विस्मयजनक ही। गावल्गणि सञ्जय कहते हैं -

कालचक्रं जगच्चक्रं युगचक्रं केशवः।
आत्मयोगेन भगवान् परिवर्तयतितिशम् ॥ उद्योग 60/12।।

(भगवान् केशव कालचक्र जगच्चक्र और युगचक्र को आत्मयोग से निरन्तर चलाते हैं) इस प्रकार सभी के सञ्चालक श्रीकृष्ण के लिए यह सहज था, कि दोनों सेनाएँ सम्मोहितावस्था में काल की गतिसीमा से कुछ समय के लिये बाहर निकल जावें, तथा उपदेश निर्बाधरूप से चले।